संपादकीय जागरण

रविवार, 8 जुलाई, 2018 : आषाढ़ कृष्ण 10 वि. 2075

सत्य परेशान हो सकता है लेकिन पराजित नहीं

एक साथ चुनाव की चर्चा

लोकसभा और विधानसभा चुनाव एक साथ कराने को लेकर विधि आयोग की ओर से बुलाई गई बैठक के पहले दिन राजनीतिक दलों के रुख-रवैये से यही संकेत मिला कि उन्हें एक साथ चुनाव का सुझाव रास नहीं आ रहा। तृणमूल कांग्रेस के प्रतिनिधि ने तो यहां तक कह दिया कि यह सुझाव अव्यावहारिक होने के साथ-साथ असंवैधानिक भी है। लगता है उन्होंने इस तथ्य से अनभिज्ञ रहना ही उचित समझा कि 1967 तक लोकसभा और विधानसभा चुनाव एक साथ ही होते थे। क्या जब ऐसा होता था तो कोई असंवैधानिक काम होता था? गोवा में भाजपा के सहयोगी दल ने एक साथ चुनाव की पहल का विरोध किया तो पंजाब में उसके पुराने सहयोगी अकाली दल ने समर्थन किया। पता नहीं पक्ष-विपक्ष के अन्य अनेक राजनीतिक दल इस मसले पर क्या कहते हैं, लेकिन इसके ही आसार हैं कि अधिकांश एक साथ चुनाव के प्रति अनिच्छा प्रकट कर कर्तव्य की इतिश्री कर सकते हैं। वैसे भी यह किसी से छिपा नहीं कि इक्का-दुक्का राजनीतिक दलों को छोड़कर अधिकांश का यही विचार रहा है कि एक साथ चुनाव की पहल सही नहीं। उनका एक साझा तर्क यह है कि एक साथ चुनाव होने से क्षेत्रीय दल घाटे में रहेंगे। इस तर्क को पूरी तौर पर निराधार नहीं कहा जा सकता, लेकिन ऐसे उपाय किए जा सकते हैं जिससे लोकसभा के साथ ही विधानसभाओं के चुनाव कराने से क्षेत्रीय दलों को कोई नुकसान न हो। निःसंदेह ऐसा तभी संभव है जब विभिन्न राजनीतिक दल एक साथ चुनाव की चर्चा के प्रति न्यूनतम गंभीरता प्रदर्शित करें। यदि बहस में ढंग से शामिल होने से ही इन्कार किया जाएगा तो फिर किसी आम सहमति पर पहुंचने का सवाल ही नहीं उठता।

यह ठीक नहीं कि राष्ट्रीय महत्व के एक गंभीर सुझाव पर ज्यादातर राजनीतिक दल अगंभीरता का परिचय दे रहे हैं। सच तो यह है कि राजनीति और चुनाव से संबंधित सुधारों के मामले में राजनीतिक दल ऐसा ही करते रहे हैं। अगर राजनीतिक तौर-तरीकों और चुनाव प्रक्रिया से संबधित सुधार लंबित पड़े हुए हैं और सुप्रीम कोर्ट को दखल देना पड़ रहा है तो राजनीतिक दलों के नकारात्मक रवैये के कारण ही। समझना कठिन है कि राजनीतिक दल समय के साथ बदलाव के लिए तैयार क्यों नहीं? निःसंदेह एक साथ चुनाव की पहल का परवान चढ़ना आसान काम नहीं, लेकिन यह ऐसा भी विचार नहीं जिसे अमल में लाना असंभव हो। आखिर अतीत में एक साथ चुनाव होने को एक नजीर की तरह क्यों नहीं देखा जा रहा है? कुछ संवैधानिक संशोधनों के साथ लोकसभा चुनाव संग विधानसभाओं के चुनाव करना संभव है। जो संभव है उस पर आनाकानी इसलिए ठीक नहीं, क्योंकि रह-रह कर होने वाले चुनाव अब एक व्याधि बन गए हैं। वे न केवल देश की तरक्की में बाधक हैं, बल्कि राजनीतिक माहौल में नकारात्मकता भी भर रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे राष्ट्रीय संसाधनों पर बोझ भी बन गए हैं। बेहतर होगा कि जो राजनीतिक दल एक साथ चुनाव के प्रति सकारात्मक राय रखते हैं वे अपनी सक्रियता बढ़ाएं और राजनीति के साथ ही देशहित में ऐसा माहौल बनाएं जिससे इस मसले पर सार्थक बहस हो सके।

महायज्ञ

यह बड़ा संकल्प है कि प्रदेश सरकार ने इस बार मानसून सत्र में नौ करोड़ पौधों के रोपण का बड़ा लक्ष्य निर्धारित किया है। वस्तुतः यह एक महायज्ञ होगा जो भावी पीढ़ी को न सिर्फ पर्यावरण संरक्षा देगा बल्कि इस अभियान के जरिये लोगों में पौधरोपण के प्रति सामाजिक चेतना भी जागृत करेगा। प्रदेश में इतनी बड़ी संख्या में पौधरोपण का लक्ष्य पहले कभी नहीं तय किया गया है इसलिए वन एवं पर्यावरण विभाग को इसे औपचारिकताओं से ऊपर उठकर अंजाम देना होगा। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ पहले से ही वन क्षेत्र बढ़ाए जाने पर जोर देते रहे हैं। यदि यह अभियान सफल होता है तो वन क्षेत्र नौ प्रतिशत से बढ़ाकर पंद्रह प्रतिशत किए जाने का लक्ष्य भी हासिल किया जा सकता है। खास यह है कि इस बार अधिकांश पौधे लगाने की जिम्मेदारी खुद वन विभाग ने संभाल रखी है। इसके लिए नर्सरी भी विभाग ने खुद ही तैयार कराई है। बारिश का क्रम अनवरत होते ही इस अभियान की शुरुआत होगी जिसमें बुंदेलखंड के पठारी क्षेत्रों और फैजाबाद मंडल पर विशेष फोकस किया जाएगा।

वन विभाग ने नौ करोड़ पौधरोपण का लक्ष्य निर्धारित कर रखा है, लेकिन इसकी सार्थकता तभी है जबकि पौधे बचे भी रहें

पौधरोपण के इस महायज्ञ की सार्थकता तभी है जबकि पेड़ लगाने के बाद उन्हें संरक्षित भी किया जा सके ताकि उनमें से अधिकांश जीवित बचे रहें। अच्छी बात है कि इस बार अधिक जोर भी पौधों को बचाए रखने पर ही है। हमारे धार्मिक आख्यानों में भी वृक्षों पर अधिक जोर दिया गया है। पंचवटी में जहां पीपल, बरगद आदि पांच वृक्षों का उल्लेख है, वहीं नक्षत्रवाटिका में 27 वृक्षों का उल्लेख करते हुए उन्हें 27 नक्षत्रों के साथ जोड़ा गया है। यदि हम इन वृक्षों को रोपित करना शुरू कर दें तो पर्यावरण की समस्या का काफी हद तक समाधान हो जाएगा।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या जम्मू-कश्मीर के गांवों की डिजिटल मैपिंग से आतंकियों के खिलाफ ऑपरेशन में मदद मिलेगी?

आज का सवाल

सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद उपराज्यपाल के साथ दिल्ली सरकार का गतिरोध अड़ियल रवैये का ही परिणाम है?

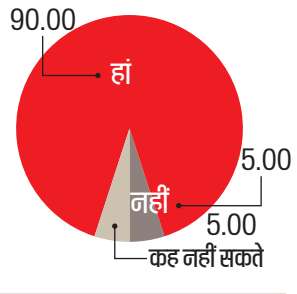

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

कर्ज माफी का महंगा सौदा

संजय गुप्त

अगर राजनीतिक दल सचमुच किसान हितैषी हैं तो उन्हें उनके कर्ज माफ करने के बजाय ऐसे काम करने चाहिए जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें

कर्नाटक में जद-एस और कांग्रेस की साझा सरकार ने अपने पहले बजट में किसानों की कर्ज माफी का ऐलान करके नए सिरे से यह रेखांकित किया कि अपने देश में वोट बैंक के लालच में ऐसे लोकलुभावन कदमों का सिलसिला थमने वाला नहीं है। कर्नाटक के मुख्यमंत्री कुमारस्वामी ने 34 हजार करोड़ रुपये के कर्ज माफ करने के फैसले को इस आधार पर सही बताया कि उनके दल के साथ-साथ कांग्रेस के भी घोषणा पत्र में किसानों का कर्ज माफ करने का वादा किया गया था। यह एक विडंबना है कि आज करीब-करीब हर राजनीतिक दल किसान कर्ज माफी की बात कर रहा है। ऐसी बातें उन राज्यों में भी की जा रही हैं जहां पहले किसानों के कर्ज माफ किए जा चुके हैं। कर्नाटक में कुमारस्वामी के पहले सिद्दरमैया ने भी किसानों के कर्ज माफ किए थे। वैसे किसान कर्ज माफी का सिलसिला संप्रग-एक सरकार के अंतिम साल में तब शुरू हुआ था जब मनमोहन सरकार ने किसानों के 72000 करोड़ रुपये के कर्ज माफ किए थे। उस समय विपक्ष में रही भाजपा ने इस फैसले का यह कहते हुए विरोध किया था कि यह सही नीति नहीं है और इससे देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ेगा। चूंकि कांग्रेस को इस फैसले का राजनीतिक लाभ मिला और उसके नेतृत्व में फिर से संप्रग सरकार बनी इसलिए राजनीतिक दलों में किसान कर्ज माफी की घोषणा करने में होड़ सी लग गई। बीते एक-डेढ़ साल में उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब समेत करीब एक दर्जन राज्य सरकारों ने किसानों के कर्ज माफ किए हैं।

कर्नाटक में विधानसभा चुनाव के दौरान जद-एस और कांग्रेस ने एक-दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ा। दोनों में से कोई भी सरकार बनाने लायक सीटें नहीं जीत पाया, लेकिन भाजपा को सत्ता से दूर रखने के लिए वे एक साथ आ गए। एक तरह से जनादेश जद-एस या फिर कांग्रेस के घोषणा पत्र के पक्ष में नहीं था, लेकिन साझा सरकार बनने के बाद कांग्रेस इसके लिए लगातार दबाव बना रही थी कि कर्ज माफी का फैसला लेने में देरी न हो। खुद कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी यह सुनिश्चित करने में लगे हुए थे कि बजट में कर्ज माफी की घोषणा हो जाए। पता नहीं हमारे नेता यह क्यों नहीं देख पा रहे कि कर्ज माफी जैसे उपायों से किसानों का कोई भला नहीं हो रहा है? कर्ज माफी के सिलसिले को देखते हुए ही वित्तमंत्री अरुण जेटली ने राज्यों को आगाह करते हुए कहा था कि अगर कर्ज माफी का सिलसिला कायम रहा तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था को गहरी चोट पहुंचाएगा।

यह किसी से छिपा नहीं कि एक बड़ी संख्या में ऐसे किसान भी हैं जो कृषि के लिए नहीं, बल्कि अपने निजी कार्यों के लिए कर्ज लेते हैं। जब उनका कर्ज माफ कर दिया जाता है तो वे किसान हतोत्साहित होते हैं जो ईमानदारी से अपना कर्ज लौटाते हैं। यह ठीक है किसानों की हालत ठीक नहीं है और उसे सुधारने के लिए बहुत कुछ करने की जरूरत है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि रह-रह कर उनके कर्ज यह जानते हुए भी माफ किए जाएं कि इससे किसी का भला नहीं हो रहा है, उलटे बैंकों की हालत खस्ता होती जा रही है। आज अगर खेती घाटे का सौदा बन गई है और एक बड़ी संख्या में किसान मजबूरी में कृषि कार्य कर रहे हैं तो इसके लिए खराब सरकारी नीतियां जिम्मेदार हैं। हमारे नीति-नियंताओं ने समय रहते न तो कृषि के आधुनिकीकरण की चिंता की और न ही ऐसे कोई प्रयास किए जिससे जरूरत से ज्यादा आबादी की खेती पर निर्भरता घटती। अगर देश की आधी से अधिक आबादी कम उत्पादकता वाली कृषि पर निर्भर होगी तो फिर ग्रामीण जीवन खुशहाल कैसे हो सकता है? यह सही है कि मोदी ने सत्ता में आते ही खेती और किसानों की दशा सुधारने पर ध्यान देना शुरू किया और उसकी ओर से एक के बाद एक कई कदम उठाए गए, लेकिन स्थिति में कोई बुनियादी बदलाव होता नहीं दिखा। इसी कारण पिछले वर्ष प्रधानमंत्री ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का संकल्प लिया। इस संकल्प के अनुरूप बजट में यह उल्लेख किया गया कि नए वित्तीय वर्ष से फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) लागत से डेढ़ गुना कर दिया जाएगा। पिछले दिनों केंद्रीय कैबिनेट ने खरीफ की 14 फसलों के बढ़े हुए न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित भी कर दिए। इसी के साथ मोदी सरकार ने एक तरह से किसानों से किया गया अपना वायदा पूरा कर दिया।

अवधेश राजपूत

इस पर आश्चर्य नहीं कि मोदी सरकार के खरीफ फसलों के बढ़े एमएसपी घोषित करने के पीछे उसका राजनीतिक स्वार्थ देखा जा रहा है। आम तौर पर सरकारों के हर फैसले राजनीतिक मकसद से ही होते हैं। यदि खरीफ की 14 फसलों की खरीद घोषित एमएसपी पर होती है तो भाजपा को इसका लाभ मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ के आगामी विधानसभा चुनावों के साथ-साथ लोकसभा चुनाव में भी मिल सकता है। जो भी हो, वक्त की मांग यह है कि कृषि आत्मनिर्भरता की ओर बढ़े। निजी क्षेत्र को कृषि जगत में सक्रिय होने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। बेहतर हो कि इसके लिए पर्याप्त नियम-कानून बनाए जाएं ताकि कृषि क्षेत्र में निवेश करने वालों की पूंजी सुरक्षित रहे।

आज हमारे ज्यादातर किसान अपनी अच्छी उपज का भी लाभ हासिल करने में समर्थ नहीं। आम तौर पर वे अपनी उपज आढ़तियों अथवा बिचौलियों को बेच देते हैं। बाद में यही उपज आम लोगों तक पहुंचते-पहुंचते महंगी हो जाती है। इस स्थिति का निराकरण इस तरह करना होगा कि किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले। बेहतर हो कि कृषि उपज की खरीद-बिक्री और वितरण का तकनीक आधारित वैसे ही कोई तंत्र बने जैसे जीएसटी के तहत बनाया गया है। ऐसे किसी तंत्र के अभाव के कारण ही खेत से निकली उपज जब तक आम उपभोक्ता तक पहुंचती है तब तक उसके दाम दोगुने-तिगुने तक हो जाते हैं। सरकार के लिए यह भी आवश्यक है कि खाद्य संस्करण उद्योग को कोल्ड चेन बनाने के लिए प्रोत्साहित करे ताकि अन्न के साथ फल और सब्जियों की बर्बादी को रोका जा सके। अपने देश में सुरक्षित भंडारण एवं ढुलाई की उचित व्यवस्था के अभाव में 20-25 प्रतिशत खाद्यान्न की बर्बादी हो जाती है। यही बर्बादी कई बार उनके मूल्यों में अनपेक्षित उतार-चढ़ाव का कारण बनती है। अगर हमारे राजनीतिक दल सचमुच किसान हितैषी हैं तो उन्हें बार-बार उनके कर्ज माफ करने के बजाय ऐसे काम करने चाहिए जिससे वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। बार-बार किसानों के कर्ज माफ करना एक तरह से उन्हें जानबूझकर संकट की हालत में बनाए रखने वाला काम है। राजनीतिक दल किसान कर्ज माफी के जरिये वोट हासिल कर सकते हैं, लेकिन वे खेती-किसानी का भला नहीं कर सकते। इस क्रम में यह भी ध्यान रहे कि फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने भर से किसानों की सभी समस्याओं का समाधान नहीं होने वाला।

response@jagran.com

सियासत के संग फुटबॉल

हास्य-व्यंग्य

निर्मल गुप्त

इस खेल में भी मैच के अंतिम क्षण तक कोई भी अपनी निष्ठा बदल सकता है। राजनीति में तो ऐसे विकल्प सदा खुले ही रहते हैं

इन दिनों फीफा विश्व कप की धूम मची हुई है। हालांकि विश्व कप भले ही यहां से हजारों किलोमीटर दूर रूस में हो रहा हो, लेकिन हमारे यहां राजनीतिक गलियारों में भी काफी फूं-फां यानी गहमागहमी जारी है। अगले साल होने वाले चुनाव से पहले हमारे सियासतदां भी चुनावी मुद्दों की फुटबॉल को ज्यादा से ज्यादा अपने कब्जे में रखकर विपक्षी खेमे के गोलपोस्ट में दागने की हसरत से खूब खिलंदड़ी में लगे हुए हैं। इसके लिए मंझे हुए खिलाड़ियों को अपने पाले में खींचने की भी भरसक कोशिश हो रही है जो चुनावी मुद्दों की बेहतरीन ढंग से ड्रिबलिंग करते हुए विपक्षी खेमे में खलबली मचाकर गोल दागकर अपनी टीम के सिर पर जीत का सेहरा बंधवा सकें। वहीं अपने बयानों से सेल्फ-गोल कराने वालों की पहचान कर उन्हें बेंच पर बिठाने की तैयारी पर भी पूरा ध्यान है कि वे बस बाहर से ही ताली पीटते रहें।

जोशोखरोश वाले फीफा के इस माहौल में भी चुनावी आहट पाकर जगह-जगह रूठे हुए राजनीतिक 'फूफा' मुंह फुलाए घूम रहे हैं। वे अपने सियासी भाव बढ़ाने की जुगत में लगे हैं, लेकिन क्या पता कि उनका दांव उल्टा पड़ जाए और 'रेफरी' उन्हें यलो या रेड कार्ड दिखाकर चलता कर दें। राजनीतिक निष्ठाओं की अदला-बदली की गजब फीफागिरी चल रही है। अतिरिक्त समय में किए गए गोल के माफिक हर कोई अपनी संभावनाएं अधिक से अधिक भुनाने की फिराक में है। कुल मिलाकर सिद्धांतों की छान फटक के लिए यह उपयुक्त समय है। तमाम दलों के गोलची अवसर को लपकने के लिए अपनी-अपनी स्किल को साधने लगे हैं। ऐसे मौकों पर नैतिकता को ताक पर टिकाकर इलेक्शन में जीतने लायक हरफनमौला प्यादे तलाशे जाते हैं। हर ओर शर्तिया जीत के समीकरणों की खोजबीन चल रही है।

बाजार भी फीफा की चमक से सराबोर है। कीमती परिधानों से सजे शोकेसों में रक्ताभ धब्बों वाली फुटबॉल गर्वीले अंदाज में धरी हैं। कतिपय रेस्तरांओं के रिसेप्शन पर फुटबॉल को ऐसे रख दिया गया है कि यह खेल का उपकरण कम बर्थडे केक या जंबो सैंडविच अधिक लगता है। कुछ जगहों पर तो फुटबॉल ऐसे रखी है जैसे वह बॉल नहीं अफवाह हो। आओ-आओ इसे उड़ाओ। फुटबॉल के साथ सारा ब्रांडेड बाजार भी अपने-अपने तरीके से झूम और फुदक रहा है।

इस बार भाग्य बांचने वाला कोई ऑक्टोपस नहीं है, इसलिए सबकी निगाह मशीन लर्निंग और कृत्रिम बुद्धिमता से निकले भाग्य के डिजिटल आंकड़ों पर टिकी। आखिरकार आंकड़े हार गए और खेलने वाले जीत कर आगे बढ़ गए। इस सबके बीच आम आदमी को यह समझ नहीं आ रहा कि यह कैसा खेल है कि पूरा मैच निबट जाता है पर यह समझ नहीं आता कि दरअसल हुआ क्या? हरे भरे मैदान में रंगबिरंगे परिधान में सजे इतने खिलाड़ी निरंतर दौड़ लगाते हैं कि लगता है टीवी या मोबाइल की स्क्रीन में रंगों की लकीरें छुपम-छुपाई खेल रही हैं। कोई खिलाड़ी कहीं ठहरता ही नहीं, अबाबीलों की तरह लगातार उड़ता ही जाता है। क्रिकेट की तरह न कोई गुलाटी मारकर कैच पकड़ता है। न कैच लपकने के बाद गब्बर की तरह मूंछों पर ताव देता है। इतनी भाग-दौड़ के बावजूद एकाध गोल हुआ तो हो गया। यह भी कोई खेल है जिसमें तमाम धरपकड़ के बावजूद नतीजा सिंगल डिजिट में निकले। न कोई कॉमर्शियल ब्रेक और न कोई स्ट्रेटेजिक टाइम आउट। फीफा चूंकि विश्व स्तर का टूर्नामेंट है इसलिए अनचाहे ही सही, वैश्विक सोच की खातिर इसे सरेआम देखना तो बनता है। इसी वजह से इस फीफा को रात-रात भर जागकर देखना पड़ता है। खुद को फुटबॉल देखने वाले एलीट क्लब का मेंबर साबित करने के लिए रियल टाइम सोशल मीडिया पोस्ट डालने का उपक्रम भी करना पड़ता है।

आइपीएल ने हमें देश की भौगोलिक सीमाओं से परे खेल भावना के तल पर ताली पीटना सिखा दिया है। हम अब जान चुके हैं कि बेगानों के खेल कौशल का भी लुत्फ उठाया जा सकता है, भले खिलाड़ी के नाम को सही से लिख-बोल भी न पाएं। फटाफट क्रिकेट की तरह बतौर दर्शक इस खेल में भी मैच के अंतिम क्षण तक कोई भी अपनी निष्ठा बदल सकता हैं। राजनीति में तो ऐसे विकल्प सदा खुले ही रहते हैं। फुटबॉल में तो यह काम बेहद आसान है। इंद्रधनुष के रंगों में से मनचाहा रंग चुनें और जो जीतता हुआ मिले उसके जश्न में खुद को शामिल मान लें। देखते रहिए, एक दिन देखते-देखते फीफा की फीफागिरी और राजनीतिक 'फूं-फा' के निहितार्थ सामने आ ही जाएंगे।

response@jagran.com

ऊर्जा

संत स्वभाव

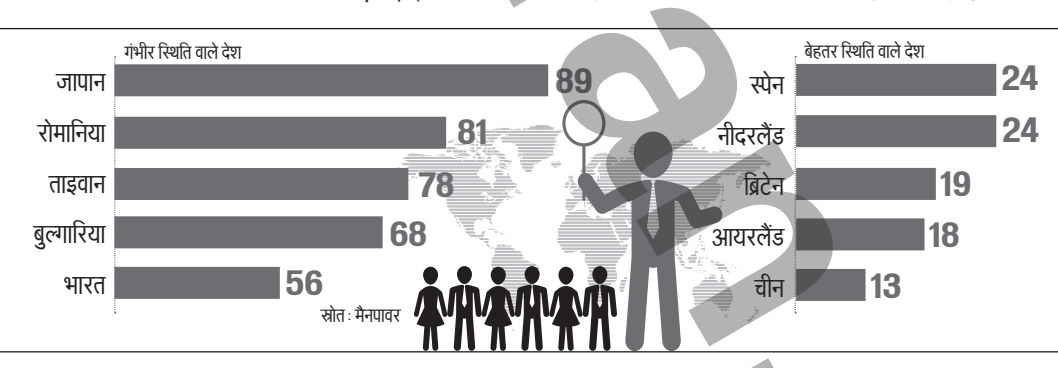

गोस्वामी तुलसीदास जी ने संत स्वभाव और दुष्ट स्वभाव का वर्णन करते हुए उनके लिए दो उपमाओं का प्रयोग किया है। वह कहते हैं कि दुष्ट ऐसे होते हैं जैसे वर्षाकाल में जल के साथ गिरने वाले ओले। ओले आकाश से गिरकर खुद तो अस्तित्वहीन हो ही जाते हैं और इसके साथ ही वे अकारण ही कृषकों की फसल को भी नष्ट करते जाते हैं। ऐसे ही दुष्ट भी खुद तो अपने कर्मों से जीवन भर छीजते ही हैं, किंतु वे दूसरों को पीड़ा देने में तनिक भी संकोच नहीं करते। ठीक इसके विपरीत संत स्वभाव होता है। यद्यपि संत-स्वभाव की तुलना मक्खन के समान की गई है, तथापि इसे ठीक इसलिए नहीं माना गया, क्योंकि मक्खन तो तब पिघलता (द्रवित) है जब उसे अग्नि का ताप दिया जाता है। अर्थात् जब वह स्वयं पीड़ा पाता है, किंतु संत का स्वभाव तो वह है जो दूसरे की पीड़ा देखकर द्रवित हो जाता है और स्वयं कष्ट उठाकर भी किसी भी जीव की पीड़ा दूर करने का प्रयास करता है।

व्यावहारिक जीवन में संत के स्वभाव की करुणा समझने के लिए यहां पर एक दृष्टांत उद्धृत करना संदर्भ सापेक्ष होगा। किसी स्थान पर नदी के किनारे एक विरक्त संत रहते थे। वे प्रातः उठकर नदी का दर्शन करते, उसे प्रणाम कर उसमें स्नान करते और अपनी पूजा इत्यादि की दैनिक क्रिया संपन्न कर भगवद् भजन में लीन रहते। स्नान करते समय एक दिन उन्होंने देखा कि एक जहरीला बिच्छू पानी में बहता हुआ जा रहा है और यदि जल्दी ही उसे पानी से बाहर नहीं निकाला गया तो बहते हुए नदी के पानी में उसके प्राण निकल जाएंगे।

संत ने करुणावश उसे अपने हाथ में उठाया, परंतु जैसे ही उन्होंने बिच्छू को नदी तट पर रखना चाहा, उसने संत के हाथ में अपना जहरीला डंक चुभो दिया।संत बिच्छू के विष के दर्द से छटपटा गए और बिच्छू छूटकर फिर पानी में गिरकर अपना जीवन बचाने के लिए छटपटाने लगा। पर संत तो संत ही थे। उस जीव के काटे जाने पर भी उसकी आपत्ति देखकर वह आगे बढ़े और उसे नदी के पानी से बाहर निकाल कर तट पर रख दिया। यह संत स्वभाव है और यही मानवता भी है। नितांत वैयक्तिक स्वार्थ के लिए जीने के अभ्यासी आज के समाज के लिए ऐसा स्वभाव परम आवश्यक है।

डॉ. गदाधर त्रिपाठी

तथ्य-कथ्य

प्रतिभाओं की किल्लत से जूझते देश

(आंकड़े फीसद में)

गंभीर स्थिति वाले देश	
जापान	89
रोमानिया	81
ताइवान	78
बुल्गारिया	68
भारत	56

बेहतर स्थिति वाले देश	
स्पेन	24
नीदरलैंड	24
ब्रिटेन	19
आयरलैंड	18
चीन	13

स्रोत : मैनपावर

मर्जी के मालिक

बिजली मंत्री आरके सिंह शीर्ष स्तर के कड़े मिजाज वाले ब्यूरोक्रेट रहे हैं। बतौर जिला कलेक्टर या बिहार सरकार में सचिव या केंद्र सरकार में गृह सचिव के तौर पर उनके कार्यकाल को अनुशासन के लिए जाना जाता है, लेकिन ऐसा लगता है कि बिजली मंत्रालय में उनकी अपने अधिकारी ही उन्हें अंधेरे में रखते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो राज्यों के बिजली मंत्रियों के सम्मेलन का इतना खराब इंतजाम नहीं हुआ होता। इस बैठक की एक आम परंपरा यह रही है कि केंद्रीय बिजली मंत्री के साथ राष्ट्रीय मीडिया की एक टीम भी आयोजन स्थल पर जाती थी जहां से देश में बिजली क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों पर रिपोर्ट फाइल होती थी। इस बार बिजली मंत्रालय के बाबुओं ने अपने कुछ पसंदीदा मीडिया घरानों को ही आमंत्रित किया और वे सभी अंग्रेजी अखबारों के थे। एक तरफ पीएमओ जहां सभी मंत्रालयों पर हिंदी व अन्य भाषाई अखबारों के जरिये अपनी उपलब्धियों को गिनाने पर जोर दे रहा है उन हालात में बिजली मंत्रालय का यह कदम चर्चा का विषय बना हुआ है।

वजीर की गलतफहमी

राजरंग

जूनियर मंत्रियों की पीड़ा अक्सर काम और विभागीय अहमियत न मिलने को लेकर रहती है, लेकिन सरकार के एक जूनियर मंत्री ऐसे भी है जिन्हें जूनियर शब्द से ही तकलीफ है। ऐसे में कोई उन्हें जूनियर कह दें तो समझ सकते है, उन पर क्या गुजरती होगी। बात पिछले दिनों की है। किसी समाचार पत्र ने उन्हें जूनियर मंत्री क्या लिख दिया, उनका मूड ही खराब हो गया। हफ्ते भर उससे नहीं उबर पाए। हर मिलने वाले से वह अपनी इसी तकलीफ का जिक्र करने से नहीं चूक रहे थे। खासकर मीडिया वालों से वह कुछ ज्यादा ही नाराज थे। उनका कहना था कि सब उन्हें जूनियर कहते हैं जबकि वह सरकार के सबसे ज्यादा पढ़े लिखे मंत्रियों में है। अब साहब को कौन समझाए कि यह राजनीति है जहां यहां डिग्री से नहीं, बल्कि राजनीतिक अनुभव और जिम्मेदारी से सीनियर और जूनियर का चयन होता है। हालांकि मंत्री पढ़ाई लिखाई वाले विभाग से जुड़े हैं। ऐसे में उनकी नजरों में हमेशा डिग्री का ही नशा छाया रहता है। वह इसी आधार पर ही लोगों का तोलमोल करते है।

खेती पर ध्यान

नीति आयोग के उपाध्यक्ष राजीव कुमार आजकल खेती और किसानों के मुद्दों पर लगातार बैठकें कर रहे हैं। हाल में उन्होंने कृषि संगठनों के प्रतिनिधियों को बुलाकर बैठक की अब। अगले हफ्ते वह 'जीरो बजट' की खेती पर बैठक करने जा रहे हैं। हालांकि चौंकाने वाली बात यह है कि जब पिछली बार उन्होंने किसानों के संगठनों के साथ बैठक की थी तो उसमें नीति आयोग के कृषि संबंधी मामले देखने वाले सदस्य रमेश चंद मौजूद नहीं थे। चंद बेंगलुरु में थे और कुमार ने यह बैठक बुला ली थी। इस पर कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ था, क्योंकि आम तौर पर आयोग में जिस विषय से संबंधित बैठक होती है तो उसमें उस विषय को देखने वाले सदस्य भी मौजूद रहते हैं। ऐसे में देखना होगा कि अगली बैठक में चंद मौजूद रहते हैं कि नहीं। वैसे राजीव कुमार जब भी किसानों के मुद्दे पर मीडिया से मुखातिब होते हैं तो वह यह बताना नहीं भूलते कि वह खुद भी खेती करते हैं।

चयन की उलटबांसी

स्नातक शिक्षा प्राप्त 'आला अफसर' भी अब देश के लिए वैज्ञानिकों का चयन कर सकते हैं। इस उलटबांसी का खुलासा जल्दी ही किया जा सकता है। जिन वैज्ञानिकों के चयन की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी जाएगी, उनमें शीर्ष स्तर के अनुसंधान संस्थानों के निदेशक तक हो सकते हैं। मंत्रालय के इस घालमेल और अदूरदर्शी कदम की जबर्दस्त चर्चा है। इसके खिलाफ वैज्ञानिकों का एक बड़ा संगठन अपना विरोध दर्ज कराने पर उतरने की तैयारी कर रहा है, लेकिन ब्यूरोक्रेसी का तर्क है कि तकनीकी संस्थानों में उसी क्षेत्र के वैज्ञानिकों के चलते गुटबंदी लॉबी है। इसकी वजह से वैज्ञानिकों की भर्ती में भेदभाव और अनियमितताएं होनी आम हैं। वैज्ञानिकों की चयन प्रणाली को पारदर्शी बनाने के लिए इस तरह का प्रावधान होना चाहिए। चेयरमैन का पद प्रशासनिक स्तर के अफसर के लिए आरक्षित करने का प्रस्ताव है। चयन मंडल में सदस्यों के पद वैज्ञानिकों से ही भरे जाएंगे, लेकिन अंतिम फैसला चेयरमैन यानी आला अफसर करेगा, जो इसी काम का माहिर होता है।

ट्वीट-ट्वीट

सात जुलाई 1999 को ही कैप्टन विक्रम बत्रा शहीद हुए थे। पाकिस्तानी फौज में उनके खौफ का आलम यह था कि उसने उन्हें शेर शाह कोड नाम दिया हुआ था। कृतज्ञ राष्ट्र ने उन्हें सर्वोच्च वीरता पुरस्कार परमवीर चक्र से सम्मानित किया।
मेजर गौरव आर्या@majorgauravarya

ड्रग एडिक्ट्स समाज में अमूमन पीड़ित के तौर पर देखे जाते हैं। उनसे निपटने के लिए समग्र रणनीति कारगर होगी। वहीं इसे बढ़ावा देने वाले, पेडलर्स और तस्करों से बहुत निर्ममता से निपटा जाए। एडिक्ट्स लोगों को पुनर्वास और समाज की मुख्यधारा से जुड़ने का अवसर दिया जाना चाहिए।
अद्वैता काला@AdvaitaKala

बेल्जियम की टीम अपने खिलाड़ियों की स्वर्णिम पीढ़ी से लैस है। ब्राजील पूरी ताकत झोंककर भी उनसे जीत नहीं पाया। खासतौर से बेल्जियम के गोलकीपर ने अद्भुत प्रदर्शन किया। इसके साथ ही नेमार का भी विश्व कप अभियान खत्म हुआ।
बोरिया मजूमदार@BoriaMajumdar

मोदीजी सच ही कह रहे हैं कि उनके पास नौकरियों का आंकड़ा नहीं है। असल में उनकी सरकार आंकड़ों के प्रबंधन में ही तो जुटी है। नोटबंदी से लेकर बढ़ती महंगाई के मामले में यही हुआ। गुलाबी तस्वीर पेश करने के लिए वे आंकड़ों में ही खुराफात करते हैं। अशोक गहलोत@ashokgehlot51

जनपथ

पाकिस्तानी स्त्रियां हैं आगे इस बार,
पुरुष झेलते दिख रहे आरोपों की मार।
आरोपों की मार चहे इमरान-मुशर्रफ,
चाहे मियां नवाज़ जिंदगी दिखती है टफ।
खवातीन का जोर पुरुष हैं भरते पानी,
चाहे हिंदुस्तान चहे हों पाकिस्तानी।

– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 354